शिक्षण : कुछ छवियाँ

सी एन सुब्रह्मण्यम्

अकसर हम पत्र-पत्रिकाओं व फिल्मों में स्कूल व कक्षा का चित्रण देखते हैं। ये चित्र हमारे मन में स्कूल और शिक्षा के बारे में कुछ गहरी धारणाओं की छाप छोड़ जाते हैं, जिन्हें हम अनायास ही आत्मसात कर लेते हैं। कभी ठहरकर उनपर विचार करें तो पता लगता है कि इन चित्रणों में छिपी धारणाएँ काफ़ी दिलचस्प हैं और समस्याप्रद भी। मैं कुछ समय से भारतीय चित्र-शिल्प कला में शिक्षण से सम्बन्धित चित्रों को खोजता रहा हूँ और अब तक कुछ दसेक बड़े ही रोचक चित्र इकट्ठे किए हैं। इस लेख में इनमें से कुछ पर चर्चा करना चाहता हूँ।

विश्व की सबसे पुरानी स्कूलनुमा संस्थाओं के बारे में हमें सुमेरिया के चार हज़ार साल पुराने शहरों से जानकारी मिलती है। उन्हें 'तख़्तीघर' या 'एडुब्बा' कहा जाता था क्योंकि वहाँ गीली मिट्टी की छोटी तख़्तियों पर पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था। ऐसी कई पाठशालाएँ पुरातात्विक उत्खनन से उजागर हुई हैं। इतिहासकार उनमें अपनाई गई पढ़ाने की विधि, पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु वग़ैरह को भी प्रकाश में लाए हैं। यहाँ पते की बात यह है कि इन शालाओं में लिपिक तैयार किए जाते थे जो उस शहरी सभ्यता का तमाम लेखा-जोखा, मिथक-पुराण, इतिहास, दस्तावेज़ीकरण वग़ैरह सम्भालते थे। उनकी बड़ी माँग थी और आदर-सम्मान भी था। यानी शालाओं की स्थापना एक विशिष्ट ज्ञान के हस्तान्तरण के लिए हुई थी। यह सभी लोगों के लिए नहीं थीं; शालाएँ केवल उनके लिए थीं जो लिपिक बनना चाहते थे और उसके लिए कई साल तैयारी में लगाने की क़ुव्वत रखते थे। शिक्षा को हमारी जैसी स्कूली शिक्षा के रूप में नहीं देखा जाता था, जो सबके लिए एक सार्वभौमिक ज़रूरत हो। शायद बाक़ी लोग अपनी ज़रूरत की बातें अपने बुज़ुर्गों के साथ काम करते-करते सीख जाते थे। जब कभी हम औपचारिक शिक्षण की बात करेंगे तो हमें यह याद रखना होगा कि बीती सहस्त्राब्दियों में यह कुछ विशिष्ट ज्ञान के लिए ही उपयुक्त था, जो काम करते-करते नहीं सीखा जा सकता था, और सन्दर्भहीन वातावरण में ख़ास तरीक़े से सीखना पड़ता था।

भारत में सम्भवतः हड़प्पा संस्कृति के शहरों में ऐसी परिस्थितियाँ उपलब्ध थीं, मगर हमें यह पता नहीं है कि उसमें पढ़ना-लिखना कितना प्रचलित था और क्या उसके लिए विशिष्ट प्रशिक्षण की ज़रूरत थी। बहरहाल, हमें औपचारिक शिक्षा के बारे में पहली बार वैदिक साहित्य में उल्लेख मिलता है। वेद और उनसे सम्बन्धित क्रियाकलाप और साहित्य ऋग्वेद के समय से ही विशिष्ट ज्ञान बन चुके थे, जिन्हें किसी गुरु से विधिवत सीखना पड़ता था। वैदिक, बौद्ध और प्रारम्भिक संस्कृत ग़ैर-धार्मिक साहित्य में हमें गुरुओं और शिष्यों के बारे में उल्लेख मिलते हैं।

पाणिनि (पाँचवीं सदी ईसा पूर्व) के व्याकरण और उनके टीकाकार पतंजलि (दूसरी सदी ईसा पूर्व) कई रोचक शब्दों का विवरण देते हैं। व्याकरण के नियमों का उल्लेख करते-करते

पाणिनि गुरुजी से नज़र चुराने वाले शिष्यों की बात करते हैं। उस पर पतंजलि व्याख्या करते हुए कहते हैं, "शिष्य गुरु से छुपता है, यह सोचते हुए कि 'अगर उपाध्याय मुझे देख लेते तो निश्चित ही कोई काम करवाएँगे या फिर डाँट लगाएँगे।' यह सोचकर वह मानसिक रूप से भी विमुख हो जाता है"।[1] एक उदाहरण में पाणिनि अध्ययन में हारने वालों के लिए 'अध्ययनात् पराजयते' का उल्लेख करते हैं। इसकी व्याख्या करते हुए पतंजलि कहते हैं कि छात्र समझ लेता है कि अध्ययन दुखदायी है और याद रखना कठिन है और गुरुओं के निकट जाना आसान नहीं है– "दुःखमध्ययनं दुर्धरं च गुरवश्च दुरुपचारा"।[2] ये हारने वाले फिर 'ड्रॉप आउट' भी हो जाते थे। ड्रॉप आउट के लिए पाणिनि एक विचित्र शब्द का उपयोग करते हैं– 'खट्वारूढ़', यानी खटिए पर चढ़ने वाला। इसकी व्याख्या करते हुए पतंजलि बताते हैं कि विधिवत अध्ययन के बाद ही गुरु की अनुमति से छात्र खटिए पर चढ़कर सोता है (वैसे अध्ययनरत ब्रह्मचारियों को पलंग पर सोना मना था)। अगर वह बीच में ही अध्ययन छोड़ देता है तो वह 'खटिए पर चढ़ा पतित' कहलाएगा।[3]

ज़ाहिर है, विधिवत वैदिक अध्ययन न आसान था और न ही रोचक। इस पृष्ठभूमि में हम कुछ प्रारम्भिक शिल्पपटलों को देखेंगे। मध्य-प्रदेश की भारहुत नामक जगह पर एक विशाल स्तूप के खण्डहर हैं, जिनमें अनेक शिल्पपटल मिले। आमतौर पर माना जाता है कि यह ईसा पूर्व 125 के आसपास बने थे। अलेक्ज़ैण्डर कन्निंघम इन शिल्पों को कलकत्ता ले गए; वहाँ वे संग्रहालय में संरक्षित हैं। इन्हीं शिल्पपटलों में से एक वह भी है जो मेरी जानकारी में इस उपमहाद्वीप का सबसे पुराना शिक्षण का चित्र है। (चित्र 1)



चित्र 1. भारहुत शिल्प पटल– दीर्घतपस शिष्यों को समझा रहे हैं

[1] पतंजलि महाभाष्य, पाणिनि सूत्र 1.4.28; F. Kielhorn, Vyakarana Mahabhashya of Patanjali, Vol. I, Bombay, 1880, पेज 329

[2] वही, पेज 328

[3] वही, पेज 384

एक पेड़ के पास एक ऊँचे आसन पर एक जटाधारी गुरु बैठे हैं। उनके सामने चार शिष्य हैं, जिनके भी बाल लम्बे हैं– तीन ने जूड़े बाँधे हैं और एक ने अपने बाल को खुला छोड़ा है। गुरु के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं दिख रहा है। गुरु की मुद्रा कुछ कहने या समझाने की है, यह उनके दाएँ हाथ और उँगलियों के इशारे से समझ आता है। उल्लेखनीय यह है कि शिष्य उनकी ओर नहीं देख रहे हैं, पर झुककर कुछ लिख रहे हैं। शायद वे गुरु की कही बातों को लिपिबद्ध कर रहे हैं। कन्निंघम ने सम्भवतः शिष्यों की शारीरिक बनावट को देखकर यह माना कि वे लड़कियाँ हैं। उनका अनुमान किस हद तक सही है यह कहना कठिन है। भारहुत स्तूप के शिल्पों की एक विशेषता यह है कि इनपर इनके शीर्षक प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में दर्ज किए गए हैं। इस पटल पर भी एक विवरण खुदा हुआ है, जिसपर लिखा है– "दीघतपसिसिसे अनुससति", यानी, 'दीर्घतपस शिष्यों को सिखा रहे हैं' (अनुशासित कर रहे हैं)। लगभग यही शब्दावली तैत्तिरीय उपनिषद के प्रसिद्ध 'शिक्षावली' अध्याय में भी है– "वेदमनूच्य आचार्यः अन्तेवासिनम् अनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर।..." (वेद सिखाने के बाद आचार्य शिष्यों को सिखा रहे हैं– सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो...)। पर दीर्घतपस वेद सिखाने वाले आचार्य नहीं थे। बौद्ध साहित्य के अनुसार वे निर्ग्रन्थ नाटपुत्र के अनुयायी थे। यह एक ग़ैर-वैदिक सम्प्रदाय था जो कि कठोर शारीरिक तपस्या पर ज़ोर देता था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार दीर्घतपस एक बार बुद्ध से वाद-विवाद करने गए और संवाद के निर्णय तक पहुँचने से पहले ही लौट गए। इस प्रसंग का इस शिल्पपटल की विषयवस्तु से कोई मेल नहीं दिखता है, अतः सम्भव है कि यह किसी और लुप्त प्रसंग के दीर्घतपस हैं।

जो भी हो, वे वैदिक शिक्षा नहीं दे रहे थे क्योंकि वेद सिखाने में लिखने की प्रथा नहीं है, वेदों को सीखने के लिए सुनकर दोहराना पर्याप्त था। दीर्घतपस जो भी सिखा रहे थे, उसे लिपिबद्ध किया जा रहा था। महिला शिष्याओं को शिक्षा देने की बात अगर सही हो तो यह और भी ख़ास बात होगी क्योंकि वेद महिलाओं को नहीं सिखाया जा सकता था। कुल मिलाकर लगता है कि शिक्षण का यह सबसे पुराना चित्रण ग़ैर-वैदिक दार्शनिक परम्परा से जुड़ा हुआ है।

इस पटल को ग़ौर से देखें तो इसमें उपयोग की गई युक्तियाँ स्पष्ट होंगी। कॉम्पोज़िशन का लगभग आधा हिस्सा गुरुजी के लिए सुरक्षित है और बाक़ी आधे पर शिष्यों को दिखाया गया है। इससे गुरु की प्राथमिकता उभरती है। उनका आकार तो बड़ा है ही मगर उनकी जटा के कारण उनका सिर और प्रमुखता पा रहा है। गुरु के ठीक सामने पेड़ को बनाकर गुरुपक्ष का वज़न बढ़ाया गया है। गुरु का सिर उठा हुआ है जबकि शिष्यों के सिर झुके हुए हैं। पटल के केन्द्र में एक शिष्य है मगर उसके वज़न को कम करने के लिए हमें केवल उसकी पीठ को दिखाया गया है। उसके सिर, लम्बे बाल और पेड़ का तना मिलकर इस पटल का अक्ष बनता है जिसके इर्द गिर्द पूरा चित्र घूमता है। यही अक्ष गुरु पक्ष और शिष्य पक्ष को अलग करता है।

मुझे मथुरा संग्रहालय में एक और, मगर बहुत फ़र्क़, शिक्षण शिल्प देखने को मिला। शैली के आधार पर इसे कुषाणकालीन (लगभग पहली सदी ईसवी) बताया जाता है। (चित्र 2) इसमें भी एक गुरु शिष्यों को शिक्षा दे रहे हैं।

इस शिल्प में गुरु छाता लेकर खड़े हैं और शिष्यों को कुछ सुना रहे हैं। सामने लगभग दस शिष्य उनकी ओर मुँह करके देखते हुए बैठे हैं। उनके आकार से लगता है कि वे सब छोटे बच्चे हैं– लेकिन सभी पगड़ी बाँधे हैं, जो कि उच्च कुल का परिचायक है। गुरु और शिष्य दोनों कपड़े पहने हैं, गुरुजी की धोती और उत्तरीय पर विशेष ध्यान जाता है। गुरुजी सम्पन्न थे, यह उनकी तोंद से भी दिखता है। पूरे कॉम्पोज़िशन में यह तोंद एक केन्द्रीय भूमिका निभा रही है। शिष्य तीन क़तारों में बैठे हैं। शायद उनसे अपेक्षा थी कि वे एक ही मुद्रा में लम्बे समय तक

बैठकर पाठ सुनें या दोहराएँ। इसलिए उनके पैरों से लेकर पीठ तक एक पट्टी बँधी है, जिसे बाद में 'योग पट्ट' कहा जाता था। इसे प्रायः ऋषि, मुनि ध्यान की अवस्था में बाँधते थे।

भारहुत पटल के समान इस पटल का भी लगभग आधा हिस्सा गुरुजी को समर्पित है। इस पटल में पेड़ की भूमिका छाता निभा रहा है– यानी गुरुजी के क़द को और उठाने में। यहाँ छाते का और भी मतलब हो सकता है। 'छात्र' शब्द की व्याख्या करते हुए पतंजलि कहते हैं कि जो गुरु की छत्र-छाया में संरक्षित है वह छात्र है। वे कहते हैं,"गुरु छाता हैं। गुरु द्वारा शिष्य छाते की तरह संरक्षित है और शिष्य द्वारा गुरु छाते की तरह संरक्षित है" ("गुरुस् छत्रम् गुरुणा शिष्यस् छत्रवत छद्यः शिष्येण च गुरुस् छत्रवत परिपालयेत्")।[4] छाता, गुरु और शिष्य के रिश्ते को ठीक वैसे ही दर्शाता है जैसे राजा के सिर पर छाता प्रजा और राजा के रिश्ते को दर्शाता है (वैसे शिल्पों में राजा का छाता और पण्डितजी के छाते में अन्तर स्पष्ट रहता है– राजा के छाते में आरी वाले चक्र का आभास मिलता है)।



चित्र 2. गुरु और शिष्य, मथुरा संग्रहालय

[4] पतंजलि महाभाष्य, पाणिनी सूत्र 4.4.62; F Kielhorn, (ed) Vyakarana Mahabhashya of Patanjali, Vol II, Bombay, 1883, Page 333

पटल में गुरु पक्ष और छात्र पक्ष के बीच कोई उभरा हुआ अक्ष नहीं है, बल्कि एक खाई रूपी अक्ष है। उस खाई के समानान्तर छाता एक तिरछा अक्ष भी बनाता है।

भारहुत पटल के विपरीत मथुरा पटल में छात्रों या शिक्षक के हाथ में कोई पुस्तक या क़लम नहीं है। शिक्षण का कारोबार मौखिक हो रहा है। गुरुजी का खड़ा होना भी महत्त्व रखता है। हो सकता है कि यहाँ छात्रों की संख्या अधिक है (वे कई क़तारों में बैठे हैं)। सब पर नज़र रहे और सबको नज़र आए इसलिए गुरुजी को खड़ा होकर सिखाना पड़ रहा है। इन सब बातों से लगता है कि यह किसी वैदिक पाठशाला का चित्रण है।

कुछ शताब्दी आगे चलते हैं, और 460 ईसवी के महाराष्ट्र के अजन्ता पहुँचते हैं।





चित्र 3. अजन्ता की गुफा नं. 16 में शिक्षा प्राप्त करते सिद्धार्थ गौतम (बुद्ध) का चित्र बना है।
(चित्र का फोटो और उसका लाईन स्कैच)

एक ऊँचे मण्डप में कक्षा लगी है जिसके केन्द्र में बालक सिद्धार्थ हैं; उनके दाएँ ओर एक लड़की है और बाएँ ओर खम्भे से आधे छिपे गुरु हैं। आगे की ओर दो छात्र और बैठे कुछ पढ़ रहे हैं। सिद्धार्थ एक टोपी और कुर्ता जैसा कुछ पहने हुए हैं। मण्डप के नीचे बालक सिद्धार्थ तीरन्दाज़ी का अभ्यास कर रहे हैं। शायद उनके गुरु सामने बैठे हैं और दो साथी देख रहे हैं। सभी लोग केवल धोती पहने हैं, कमर के ऊपर कुछ पहना नहीं है।

अगर हम पहले दो चित्रों से इसकी तुलना करें तो बहुत से फ़र्क़ दिखेंगे। पहली बात तो यह है कि इस चित्र में गुरुजी की प्रधानता नहीं है। या तो उन्हें एक कोने में खम्भे के पीछे छुपाया गया है या फिर वे हमें पीठ दिखाए एक कोने में बैठे हैं। दूसरी बात यह है कि सब अपने-अपने तरीक़े से पढ़ रहे हैं, गुरुजी की ओर ख़ास देख भी नहीं रहे हैं। ज़ाहिर है कि यह चित्र सिद्धार्थ (भविष्य के बुद्ध) के महिमा मण्डन के लिए बनाया गया है और कुछ हद तक स्वाभाविक है कि इसमें गुरुजी को महत्त्व कम ही दिया जाएगा। मगर इसमें शिक्षण का एक नया दर्शन दिखता है, जो कुछ हद तक भारहुत शिल्प में भी नज़र आया था।

हम पहले यह देखें कि साहित्य में सिद्धार्थ के शिक्षण के बारे में क्या कहा गया है, तो इस नए दर्शन का कुछ और उद्घाटन होगा। अश्वघोष की लिखी 'बुद्धचरित' गौतमबुद्ध की सबसे प्राचीन जीवनी है, जिसे पहली सदी ईस्वी में रचा गया था। यह संस्कृत के प्रारम्भिक काव्यों में से एक है। इसमें अश्वघोष केवल यह कहते हैं कि बुद्ध अपने कुल-योग्य सभी बातें बहुत तेज़ी से सीख गए जिसे सीखने में बाक़ी लोग सालों लगा देते थे। अश्वघोष ने जब कुल-आधारित शिक्षा की बात की थी तब शायद उनका आशय तीरन्दाज़ी और युद्ध कला से भी रहा होगा जो कि क्षत्रियों के लिए ज़रूरी थी। सिद्धार्थ की पाठ्यचर्या में ग्रन्थों का अध्ययन और तीरन्दाज़ी दोनों समान रूप से शामिल थे। इसके बाद रची गई जीवनियों में बुद्ध को एक अतिमानवीय दर्जा देने का प्रयास है और बहुत सी चमत्कारी बातें जोड़ी गई हैं। इनके अनुसार सिद्धार्थ का शिक्षक एक ब्राह्मण था। मगर शिक्षा शुरू होते ही सिद्धार्थ ने सभी प्रकार की लिपियों की जानकारी प्रदर्शित की। गुरुजी के पास उन्हें पढ़ाने के लिए कुछ नहीं था। शिक्षा के बाद एक प्रतियोगिता हुई जिसमें सिद्धार्थ ने एक तीर से सात ताड़ के पेड़ों को चीरते हुए निशाने पर वार किया।



चित्र 4. अजन्ता की गुफा नं. 2 में हारिति और पंचिक



चित्र 5. अजन्ता की गुफा नं. 2 के उसी शिल्प के आसन के हिस्से का डीटेल

इस प्रसंग में यह विचार निहित है कि सिद्धार्थ स्वयं ही ज्ञानवान थे, उन्हें सिखाने की ज़रूरत नहीं थी, फिर भी उन्होंने ग्रन्थों का अध्ययन किया और तीरन्दाज़ी का अभ्यास किया।

इस चित्र में सभी छात्र-छात्राएँ ख़ुद ग्रन्थों की मदद से अध्ययन कर रहे हैं और गुरुजी केवल एक कोने में मौजूद हैं। दूसरे प्रसंग में सिद्धार्थ किसी को देखकर तीर नहीं चला रहे हैं बल्कि ख़ुद अपने प्रयास से तीर चलाना सीख रहे हैं या प्रस्तुत कर रहे हैं।

अब एक मज़ेदार कक्षा का चित्र देखेंगे जो कि अजन्ता की ही गुफा नं. 2 में है। यह वास्तव में एक शिल्पपटल है जो हारिति और पंचिक के विशाल शिल्प के आसन पर खुदा हुआ है। हारिति और पंचिक उन दिनों बच्चों के रखवाले देवी और देवता माने जाते थे।

पटल के दाएँ सिरे पर गुरुजी एक ऊँचे आसन पर बैठे हैं। गुरुजी कुछ भारी-भरकम हैं और थोड़ी तोंद भी निकली हुई है, मथुरा वाले गुरुजी की तरह। पर उनका ख़ास परिचय तो उनकी लम्बी छड़ी है। दाएँ हाथ में थामी हुई छड़ी बच्चों की ग़लतियों का इन्तज़ार कर रही है। नीचे तीन बच्चे बैठे हुए हैं और उनके हाथों में तख़्तियाँ हैं जिन पर वे कुछ लिख रहे हैं। उल्लेखनीय है कि यहाँ भी केवल श्रवण आधारित शिक्षा नहीं है, बल्कि लिखने-पढ़ने पर ज़ोर है। पहले दो बच्चे तो तल्लीनता के साथ लिख रहे हैं, मगर तीसरा बच्चा कुछ 'बोर' सा हो रहा है। वह अपनी तख़्ती को ढीला छोड़कर सामने की ओर देख रहा है। उसके पीछे एक चौथा बच्चा है जो उठ खड़ा हुआ है और अपने एक और साथी के बुलावे पर वहाँ से खिसकने की मुद्रा में है। पटल के बाईं ओर दो बकरे आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। दो बच्चे उनपर सवारी करने की कोशिश कर रहे हैं और तीन और बच्चे उन्हें उकसा रहे हैं। शायद वे अपनी बारी का भी इन्तज़ार कर रहे हैं। इसी मज़े में भाग लेने के लिए बच्चे कक्षा से धीरे-धीरे खिसक रहे हैं।

कक्षा की नीरसता और बाहरी दुनिया की मस्ती की दो विपरीत स्थितियों को शायद ही इससे बेहतर किसी कलाकृति में दर्शाया गया हो। बच्चे कुल दस हैं तो सांख्यिकी का उपयोग करने का लालच हो जाता है। दस में से केवल दो या ज़्यादा से ज़्यादा तीन बच्चे शिक्षा में रुचि ले रहे हैं। बाक़ी आठ उस शिक्षा से विमुख हो जाते हैं। बाहरी दुनिया इतनी रंगीन और मस्ती भरी जो है। बाहरी वास्तविक दुनिया से सीखने की बजाय उससे विमुख कर देने वाली शिक्षा भला किसे भाए!

औपचारिक शिक्षा की नीरसता ख़ुद एक छन्नी का काम करती है। इसमें दस में से आठ बच्चे तो ड्रॉप आउट हो जाते हैं और बस दो-तीन की नैया पार हो पाती है। भारत सरकार के आँकड़ों के अनुसार आज भी दस में से पाँच बच्चे दस साल की शिक्षा पूर्ण करने से पहले ड्रॉप आउट हो जाते हैं।

समकालीन यूनान से कुछ छवियाँ

अपने उपमहाद्वीप के इन चित्रों पर सोचते-सोचते उसी दौर में यूनान, मिस्र व चीन की शिक्षण-छवियों पर भी मेरा ध्यान गया। यूनान में लगभग पाँचवीं सदी ईसा पूर्व में व्यवस्थित

विद्यालयों की स्थापना हुई थी। तब केवल अभिजात्य वर्ग के बच्चों को औपचारिक शिक्षा का मौक़ा मिलता था। यूनान में औपचारिक शिक्षा में प्राथमिकता संगीत और खेल को दी जाती थी और काफ़ी बाद में लिखना-पढ़ना महत्त्वपूर्ण बना। यहाँ एक मृदभाण्ड पर बने चित्र (चित्र-6) को देखें तो उन दिनों के शिक्षण के इन पहलुओं का पता चलेगा। इस चित्र में एक ओर एक संगीत शिक्षक अपने छात्र को एक वाद्य बजाना सिखा रहे हैं। छात्र और शिक्षक दोनों कुर्सियों पर बैठे हुए हैं। बीच में शायद वही शिक्षक पढ़ना सिखा रहे हैं और छात्र खड़ा हुआ है। उल्लेखनीय है कि छात्र के पास न कोई किताब है, न लिखने की सामग्री है। अन्त में एक व्यक्ति एक लम्बी छड़ी हाथ में लिए कुर्सी पर बैठा हुआ है। यह, वह व्यक्ति था जो बालक को रोज़ घर से स्कूल लाता था और उसके शिक्षण के दौरान ग़ौर से देखता रहता था, और वापस उसे घर ले आता था— यानी पूरे समय वह छात्र की निगरानी करता था। आमतौर पर वह एक दास होता था। लेकिन बालक के शिक्षण में उसकी भूमिका अहम थी; कहा जाता है कि उसकी भूमिका वास्तविक शिक्षकों से कहीं अधिक थी। शिक्षक तो छात्र को बस गाना-बजाना या पढ़ना-लिखना सिखाते थे। लेकिन यह दास उसकी सभी शैक्षणिक ज़रूरतों पर नज़र रखता था और उसके नैतिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता था। वह लगभग पूरा दिन बालक के साथ ही गुज़ारता था। इस दास को यूनानी भाषा में 'पेडगॉग' कहा जाता था।



चित्र 6. डौरिस नामक कलाकार द्वारा एक मिट्टी के कलश पर बनाया गया शिक्षण का चित्र, यूनान, पाँचवीं सदी ईसा पूर्व

यही शब्द आगे जाकर शिक्षण के लिए उपयोग किया जाने लगा— पेडगॉजी (शिक्षण विधि), पेडगॉग (शिक्षक)। यूनानी मूर्तिकला में पेडगॉग के कई मार्मिक चित्रण देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए इन दो चित्रों को देखें। तीसरी सदी ईसा पूर्व में बने ये टेराकोटा शिल्प यूनानी शिक्षण में दासों की भूमिका को उजागर करते हैं। पहले चित्र में दास एक हाथ पर बच्चे का बस्ता लेकर और दूसरे हाथ से बच्चे का हाथ पकड़कर स्कूल ले जा रहा है। दूसरे में दास सोते हुए बच्चे को कंधे पर उठाकर और दूसरे हाथ में लालटेन लिए स्कूल जा रहा है (कहा जाता है कि सर्दियों में सुबह अँधेरा होता था, जिसके कारण लालटेन की





चित्र 7, 8. बालकों को स्कूल ले जाते पेडगॉग (टेराकोटा शिल्प, तीसरी सदी ईसा पूर्व, बर्लिन एवं अन्य संग्रहालय)

ज़रूरत थी), और उसके गले से बस्ता लटक रहा है।

मृदभाण्ड चित्रों में एक अभिजात्यता दिखती है जो कि मिट्टी के शिल्पों में नहीं है। इन शिल्पों में, शिक्षण में दास पेडगॉगों की भूमिका को बहुत ही प्रेम से और दर्द व सहानुभूति के साथ दर्शाया गया है। जहाँ चित्र में आदर्श पर ज़ोर है, वहीं शिल्प में वास्तविकता उभर कर आती है।

ज़ाहिर है कि प्राचीन यूनान में अभिजात्य शिक्षा की एक अलग कल्पना थी जिसमें कला, खेल, साहित्य, आदि का बराबर स्थान था। शिक्षण के चित्रों में हमें एक छात्र और एक शिक्षक ही दिखते हैं, एक सामूहिक कक्षा का आभास नहीं मिलता है। लिपि सीखने या साहित्य रटने पर भारतीय परम्परा की तुलना में अपेक्षाकृत कम महत्त्व दिखता है।

कुछ अनुत्तरित सवाल

शिक्षण के चित्रण से हमें शिक्षा की अलग अलग कल्पनाओं का आभास तो मिलता ही है, जिसे दोहराने की जरूरत नहीं है। लेकिन कई सवाल भी उठते हैं जिनपर विचार करना लाभकर होगा। क्या लिपि और ग्रन्थ आधारित शिक्षा शुरुआत में ग़ैर-ब्राह्मणवादी परम्पराओं से जुड़ी थी? सीखने-सिखाने में शिक्षकों की भूमिका के अलावा स्वाध्याय व प्रायोगिक क्रियाकलापों का क्या स्थान था? शिक्षण में बाहरी अनुशासन और हिंसा (छड़ी) का क्या स्थान बन रहा था? और क्या कक्षा की नीरसता ख़ुद एक सामाजिक छन्नी का काम करने लगी थी? इन सवालों के कुछ जवाब तो इन चित्रों में हैं, मगर ये इशारे भर हैं, और हम साहित्य और कला के गहन अध्ययन के बाद ही कुछ निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं।

सी एन सुब्रह्मण्यम् पिछले तीन दशकों से एकलव्य के सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम से जुड़े रहे हैं। वर्तमान में सेवानिवृत्त हैं और इतिहास के बारे में बच्चों और शिक्षकों के लिए लिखने में रुचि रखते हैं।
सम्पर्क : subbu.hbd@gmail.com